आत्म कथन

धन्य बाबा !

आचार्य सत्यनारायण गोयन्का

आत्म कथन

धन्य बाबा!

विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी

विषय-सूची

प्राक्कथन I

धन्य बाबा! १

थे बिरमा भल बासियो १

जननी जन्मभूमि ७

विपश्यना के स्वर्णिम अतीत की एक झांकी ११

भदन्त लैडी सयाडो १६
सयातैजी १७
सयाजी ऊ बा खिन १७

धारित धर्म की कड़ी परीक्षा १९

जीवन में एक नया मोड़ आया २२

एक विकट परिस्थिति ३१

एक और चमत्कारिक घटना ३६

एक नई समस्या उभरी ३९

कृतज्ञताभरी मंगल कामनाएं ४४

कृतज्ञता भारत के प्रति ४६

धन्यता ४८

बाबा-प्रणाम! ४९

एक दशक पूरा हुआ ५५

साठ वर्ष पूरे हुए ६२

धर्मदेश में सवा सौ वर्ष ६८

बाबा की विरासत ६९
१) घुमक्कड़ जीवन ६९
२) अनमोल श्रद्धा ७०
३) राजस्थानी दोहे और लोक कथाएं ७४
४) देशप्रेम ७४
५) ग्राहकों के प्रति वफादारी ७५
६) व्यापार और 'बंडुला' ७६

बहुप्रचलित राजस्थानी शब्दों के अर्थ ७९

बाबा दोहा ८३

धरम रतन पायो इसो! ८३

जीवन मँह धार्यो धरम ८७

जन जन नै बांटूं धरम! ८९

बाबा-दोहे ९६

विपश्यना की तपोभूमियां १०७

परिशिष्ट –
१- विपश्यना साहित्य १११
२- विपश्यना साधना के केंद्र ११४

प्राक्कथन

मैं सचमुच भाग्यशाली हूं। मेरा जन्म एक अत्यंत धर्मपरायण परिवार में हुआ। माता और पिता दोनों भक्तिमार्ग के श्रद्धालु पथिक थे। अतः प्रपत्तिपरक आर्द्रभक्ति के भावुक वातावरण में मेरा पालन-पोषण हुआ। मेरे जीवन की अध्यात्म-यात्रा सगुण साकार भक्ति की छत्रछाया में आरंभ हुई।

सौभाग्य से बाल्यावस्था के प्रारंभिक गुरु भी परम भक्त थे। स्वयं सदाचार का जीवन जीते थे और अपने शिष्यों को जीवन में सदाचरण धारण करने की प्रभावशाली शिक्षा देते थे। हिंदी की भक्तिभावमयी पाठ्य पुस्तक से ही उन्होंने मेरी प्राथमिक शिक्षा आरंभ की थी। इसका भी जीवन पर गहरा असर पड़ा।

किशोर अवस्था प्राप्त होते-होते आर्यसमाज के संपर्क में आया। यद्यपि महर्षि दयानंदजी के आध्यात्मिक विचारों का मन पर घनीभूत प्रभाव पड़ा, तथापि सगुण-साकार की भक्ति नहीं छूट पायी। परंतु अंधभक्ति और अंधविश्वासों से अवश्य बहुत कुछ छुटकारा मिला। सामाजिक कुरीतियों के प्रति प्रबल विद्रोह के भाव भी जागे। कुल मिला कर मैंने देखा कि अध्यात्म के क्षेत्र में मेरा प्रमोशन ही हुआ।

सदाचारमय जीवन जीने का और चित्त को विकारों से सर्वथा विमुक्त रखने का लक्ष्य प्रबल होता गया। परंतु युवावस्था प्राप्त होते-होते हजार चाहने पर भी काम, क्रोध और अहंकाररूपी शत्रु मन पर सवार होने लगे। भागवतगीता का मन पर बहुत गहरा प्रभाव था। विशेष कर बारहवें अध्याय में वर्णित भक्त के लक्षण जीवनादर्श को पुष्टि प्रदान करते थे। स्थितप्रज्ञता की व्याख्या भावविभोर करती थी। रंगून के विभिन्न धार्मिक अवसरों पर जनसमूह के बीच गीता की महानता पर प्रवचन देता। स्थितप्रज्ञता की प्रशंसा करता हुआ नहीं अघाता। परंतु बहुधा ऐसे प्रवचनों के बाद घर लौट कर अपने में स्थितप्रज्ञता का सर्वथा अभाव देख कर मन उदासी से भर-भर उठता। **वीतरागभयक्रोधः ...** की **स्थितधिः** अवस्था प्राप्त

करने के लिए मानस छटपटाता। नित्य प्रातः की आर्द्र भक्ति और गीता के आदर्श को जीवन में उतारने का दृढ़संकल्प मन को कुछ समय के लिए अवश्य शांत करता, परंतु शीघ्र ही पुनः काम, क्रोध और अहंकाररूपी शत्रुओं का गुलाम हो जाता।

ऐसे में विपश्यना में सम्मिलित होने का एक अवसर सामने आया। "बुद्ध" के प्रति असीम श्रद्धाजन्य आकर्षण और "बौद्ध धर्म" के प्रति उतना ही प्रखर विकर्षण होने के कारण प्रारंभिक झिझक होते हुए भी इस विद्या को आजमा कर देखने का निर्णय किया। मेरा परम सौभाग्य जागा। बुद्ध की शिक्षा के प्रति जो नितांत निराधार भ्रांतियां थीं वे दूर हुईं। विपश्यना विद्या विज्ञानसम्मत है, युक्तिसंगत है, तर्कसंगत है, अंधविश्वासों से सर्वथा विमुक्त है, साधक को किसी सांप्रदायिक बाड़े में बांधने का दुष्कर्म नहीं करती, बल्कि सभी बाड़ेवंधनों को तोड़ती है। यह विद्या सर्वथा सार्वजनीन है, सार्वभौमिक है और सार्वकालिक यानी सनातन है, यह सत्य प्रत्यक्षतः प्रकट हुआ। और सबसे बड़ी सच्चाई यह प्रकट हुई कि यह विद्या आशुफलदायिनी है। पहले ही शिविर में शारीरिक ब्याधि ही दूर नहीं हुई, बल्कि मन की ब्याधि को भी दूर करने की कारगर चिकित्सा प्राप्त हुई। यह भी स्पष्ट हुआ कि यह विद्या भारत के उच्च आध्यात्मिक सिद्धांतों की क्रियात्मक प्रयोगशाला है। बुद्ध की सही शिक्षा के क्षेत्र में पांव रखते ही मुझे लगा कि मेरा नया जन्म हुआ। आर्यसमाज के प्रभाव से आध्यात्मिक क्षेत्र में जो प्रमोशन हुआ था वह अब डबल प्रमोशन में बदल गया। विकारमय चित्त को विकारों से विमुक्त करने की संजीवनी औषधि मिल गयी। अध्यात्म के क्षेत्र का खुला राजमार्ग मिल गया। मैं निहाल हो गया। जिन गलियों में-से गुजरते हुए इस राजमार्ग पर पहुँचा, उनके प्रति मन में जरा भी दुर्भावना नहीं जागी। बल्कि उन अनुभवों को भी अत्यंत कल्याणकारी माना। उन्हीं से तो आध्यात्मिक जीवन का आधार मिला था। परंतु राजमार्ग पर कदम रखने पर ही अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने का सहज, स्वस्थ व्यावहारिक आधार मिला।

जब यह मालूम हुआ कि भारत की यह अत्यंत पुरातन विद्या भारत से ही नहीं, बल्कि सारे विश्व से सर्वथा विलुप्त हो चुकी है, केवल यहीं ब्रह्मदेश

में गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा चंद संतों ने इसे अपने मौलिक शुद्ध रूप में जीवित रखा है तब इस कल्याणकारी परंपरा के प्रति, मेरे विपश्यना गुरु के प्रति और मेरी धर्ममयी मातृभूमि के प्रति कृतज्ञताविभोर हो उठा। इससे भी अधिक कृतज्ञता भगवान बुद्ध के प्रति जागी। मुझे लगा कि भगवान बुद्ध ने अनेक जन्मों तक महान कष्ट सहते हुए सभी पारमिताओं की परिपूर्णता प्राप्त कर जो सम्यक संबोधि उपलब्ध की, वह मानो मेरे लिए ही की। मेरी मुक्ति के लिए ही की। धर्मराज सम्राट अशोक ने यह कल्याणी विद्या अरहंत सोण और उत्तर के माध्यम से ब्रह्मदेश भेजी, वह मानो मेरी मुक्ति के लिए ही भेजी। यहां की संतपरंपरा ने इस विद्या को मानो मेरे लिए ही संभाल कर रखा। मेरे धर्मपिता सयाजी ऊ बा खिन सरकारी जिम्मेदारियों में पूर्णतया व्यस्त रहते हुए भी थोड़े-थोड़े लोगों के लिए जो विपश्यना शिविर लगाते रहे, वे भी मानो मेरे लिए ही ऐसा करते रहे। और फिर अपने पूज्य बाबा की याद आयी। असीम कष्टों का सामना करते हुए राजस्थान की मरुधरा से इस धर्मदेश में वे मेरे लिए ही आकर बसे। अतः उनके प्रति भी मन कृतज्ञता के भावों से ओतप्रोत रहने लगा। परिणामतः श्रद्धा और कृतज्ञता के पुनीत भावों से उद्वेलित हुए मन मानस से राजस्थानी दोहों के रूप में मेरे हृदयोद्गार बार-बार प्रस्फुटित होते रहे। बर्मा छोड़ कर भारत आने पर दुखियारे लोगों की धर्मसेवा करते हुए भी ये उद्गार स्वतः प्रकट होते ही गये। ये दोहे अत्यंत वैयक्तिक हैं, स्वान्तःसुखाय हैं। अतः इनके प्रकाशन की ओर कभी ध्यान नहीं दिया और न ही इसे आवश्यक समझा। परंतु इन दोहों पर कुछ अंतरंग साधकों की नजर पड़ी। वे इन्हें पढ़ कर भावविभोर हुए। एक विदेशी साधक ने इनके गहन भावों को यथार्थतः समझ कर उन्हें अंग्रेजी भाषा में प्रकट किया। तब पहली बार अंग्रेजी अनुवाद सहित 'बाबा दोहा' की पुस्तक प्रकाशित हुई। परंतु उसका वितरण बहुत थोड़े से लोगों तक सीमित रखा गया। यह पुस्तक बर्मा के मेरे एक मित्र साधक के हाथ लगी। वह इससे अत्यंत प्रभावित हुआ। उसने इन दोहों का बर्मी भाषा में अनुवाद कर दिया। तदनंतर इसे प्रकाशित भी कर दिया। वहां यह अत्यंत प्रसिद्ध हुई। धीरे-धीरे भारतीय साधकों में भी इसकी चर्चा होने लगी और सभी साधकों के भले के लिए इसके प्रकाशन के लिए मुझ पर दबाव पड़ने लगा। अतः बाबा के बर्मा आगमन की १२५ वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर इसे

सब के लाभार्थ प्रकाशित करने का निर्णय किया। इसमें कुछ एक प्रासंगिक लेख भी सम्मिलित कर दिये, जो कि पहले 'विपश्यना' पत्रिका में प्रकाशित हो चुके थे। एक-दो नए लेख भी लिखे और इसमें जुड़े। नितांत स्वान्तःसुखाय और अत्यंत वैयक्तिक होने पर भी यदि इन दोहों के प्रकाशन से बहुजन का हितसुख हो, तो यह प्रकाशन अवश्य सफल सिद्ध होगा, सार्थक सिद्ध होगा।

सब का मंगल हो! सब का कल्याण हो!!

कल्याणमित्र,
सत्यनारायण गोयन्का